यह पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, अमृतचन्द्राचार्य कृत है। पाँचवीं गाथा चलती है। है? गुजराती है या हिन्दी है? ठीक! क्या कहते हैं? देखो! अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि हुए हैं। भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त संवत् ४९ में भरतक्षेत्र में विराजमान थे। उन्होंने जो समयसार आदि शास्त्र रचे, उनकी टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य आज से नौ सौ वर्ष पहले महा दिगम्बर सन्त मुनि वनवासी थे। तीन शास्त्रों की तो उन्होंने टीकायें की हैं — समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय। यह पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, तत्त्वार्थसार आदि ग्रन्थ उन्होंने रचे हैं। उसमें यह पुरुषार्थसिद्धि-उपाय की पाँचवीं गाथा चलती है। देखो!

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्।
भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः।।५।।

क्या कहते हैं? जरा सूक्ष्म बात है।

भावार्थ : भूतार्थ नाम सत्यार्थ का है। भूत-विद्यमान, जो मौजूदगी चीज है, त्रिकाल मौजूदगी अस्तिवाली चीज है, उसे यहाँ भूतार्थ कहते हैं। भूत कहते हैं, पदार्थ... अर्थ, अर्थ कहने से भाव, यहाँ ऐसा लेना है। आत्मा में त्रिकाल भाव ज्ञायकभाव है। समझ में आया? आत्मा में ज्ञायकभाव भूत, विद्यमान, मौजूदगी भाव है, उसे बतलानेवाला निश्चयनय है अथवा वह स्वयं निश्चयनय है। सूक्ष्म बात आयी।

भूतार्थ नाम सत्यार्थ का है। सत्य वस्तु, सत्। जो आत्मा ध्रुव ज्ञायकभाव

www.vitragvani.com

शुद्धभाव परमभाव — ऐसा भाव धारक आत्मा, वही भाव सत्य है, भूतार्थ है, सच्चा है। उसे बतलानेवाले नय को निश्चयनय कहा जाता है। सच्चा ज्ञान भूतार्थ को बतलाता है। नय का ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान — ऐसा अर्थ किया। नय अर्थात् सच्चे ज्ञान का अंश यथार्थ वस्तु को बतलाता है। आत्मा, जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना होवे, उसे जिसे आत्मा का धर्म करना होवे तो वह धर्म किस प्रकार होता है ? कि आत्मा कायम ज्ञायकभाव भूत -विद्यमान, मौजूद भरा है, उसकी अन्तर्दृष्टि करने से। क्योंकि वह सत्यार्थ पदार्थ है, सत्यार्थ पदार्थ की अन्तर्दृष्टि करने से सत्य की प्रतीति सम्यग्दर्शन इस कारण से होती है। शोभालालजी ! सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : वास्तविक बात है।

उत्तर : वास्तविक बात है। वास्तविक बात यह है। निश्चय कहो, सत्य कहो, वास्तविक कहो, यथार्थ कहो, वास्तविक कहो। जैसा इसका भाव मौजूदगी-अस्ति में है, उसे ही निश्चय कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं कि **उनको जो प्रकाशित करे...** ऐसे आत्मा में ज्ञायकभाव त्रिकाल है। राग, शरीर, कर्म नहीं और शरीर, कर्म के लक्ष्य से उत्पन्न हुए पुण्य-पाप के भाव भी आत्मा के मूल भाव में नहीं। यह व्यवहार.. व्यवहार कहते हैं न ? दया, दान, व्रत, विकल्प — वह शुभराग है अवश्य, परन्तु उस विद्यमान भाव — ज्ञायकभाव में वह है ही नहीं। समझ में आया ? वह ज्ञायकभाव जो यथार्थ सत्यार्थ वास्तविक सत्य स्वरूप है; उसे शरीर, वाणी, मन से भिन्न करके और शरीर, मन, वाणी, कर्म के लक्ष्य से हुए (भाव), यदि पर का लक्ष्य छोड़कर अन्दर भूतार्थ का लक्ष्य करे तो इनका — शरीरादि परद्रव्यों का तो लक्ष्य छूटता ही है, परन्तु ये रागादि विकल्प है, उनका भी लक्ष्य छूट जाता है, तब ज्ञायकभाव चैतन्यस्वरूप की दृष्टि इसे होती है। इसका नाम निश्चयनय, यथार्थनय, उचित सत्य की शरण ली — ऐसा कहा जाता है। आहा.. !

अन्दर वस्तु भूतार्थ कहा न ? ध्रुव ! जो भाव अन्दर में है **उनको जो प्रकाशित करे...** अन्तर ज्ञान में त्रिकाल भाव चैतन्यस्वभाव ज्ञान में प्रकाशित हो अथवा वह भाव ज्ञात हो, उसे निश्चय कहते हैं। **अन्य किसी प्रकार की कल्पना न करे, उसे भूतार्थ**

www.vitragvani.com

कहते हैं। दूसरी कल्पना न करे। दूसरे प्रकार से, उसमें रागादि है, शरीरादि है, कर्म आदि है — ऐसी कल्पना न करे। समझ में आया? **उसे भूतार्थ कहते हैं।** उसे यहाँ भूतार्थ ज्ञायक मूल चीज है यह (– ऐसा कहते हैं।) अनन्त काल से यह निश्चय सत्यार्थ चीज क्या है — इसकी इसने रुचि की ही नहीं, दृष्टि की ही नहीं। अकेला व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार (किया)। शरीर की क्रिया, मन की क्रिया, वाणी की क्रिया, दया, दान के परिणाम, शुभाशुभभाव की दृष्टि रखी, जो कि अभूतार्थ है। त्रिकाल चीज में वे नहीं हैं। अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं, उनका लक्ष्य किया, उनका अस्तित्व स्वीकार किया। वह दृष्टि तो संसार, मिथ्या संसार है। समझ में आया?

कहते हैं, **किसी प्रकार की कल्पना न करे, उसे भूतार्थ कहते हैं। जिस प्रकार कि सत्यवादी सत्य ही कहता है, कल्पना करके कुछ भी नहीं कहता।** जैसा हो, वैसा कहे। समझ में आया? यह कहा था न? अफीम का केस चला था। तीन घण्टे केस चला। उम्र १७ वर्ष की। हमारे सभी सगे-सम्बन्धियों को ऐसा लगा कि यह तो... तीन घण्टे केस (चला) एक दिन। (संवत्) १९६३ में। महीने के तीन हजार के वेतनवाला (जज था)। उस दिन तीन हजार, हों! मासिक। १९६३ का साल। तीन घण्टे कोर्ट में (गये थे)। हमारा छोटा भाई कहे — भाई! कैसे हुआ? मैंने कहा — अपने को सत्य था, वह कहना था, सत्य था, वह कहना है। अपने को कल्पना करनी नहीं थी या दूसरा कुछ करना नहीं था; इसलिए उलझन थी नहीं। प्रवीणभाई! यह बात बनी थी। समझ में आया? बाहर निकले तो... तीन घण्टे, मेरी साक्षी थी। सत्रह वर्ष की उम्र। (संवत्) १९४६ में जन्म और १९६३ में वह बड़ा गोरा, तीन हजार का मासिक वेतन, उस दिन! समझ में आया? तीन घण्टे (चला), बाहर निकलकर छोटा भाई कहे-कैसे क्या हुआ? यहाँ तो जैसी सत्य बात थी, वह कह दी। अपने को कल्पना करके कहाँ लगानी है?

इसी प्रकार सत्यवादी तो जो है, वैसा कहे, कल्पना करके न कहे कि ऐसे लगाओगे तो ऐसा होगा, ऐसे लगाओगे तो ऐसा होगा — ऐसा कुछ है नहीं। सत्यवादी... है न? **सत्य ही कहता है, कल्पना करके कुछ भी नहीं कहता।** झूठा कुछ लगाना होवे तो कल्पना हो। सत्य तो सत्य है। त्रिकाल ज्ञायकभाव अनन्त गुणराशि प्रभु आत्मा विराजमान है, उसे

www.vitragvani.com

निश्चयनय बतलाता है; और उसकी दृष्टि करना, उसकी दृष्टि करना - वही प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शनरूपी धर्म, आत्मा का साक्षात्कार होता है, उसे यहाँ धर्म कहते हैं। समझ में आया?

वहीं यहाँ बताया जाता है। यद्यपि जीव और पुद्गल का अनादि काल से एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध है... भगवान आत्मा जीव और यह पुद्गल कर्म, शरीरादि; अनादि से एकक्षेत्रावगाह — एक क्षेत्र में व्यापक दिखते हैं। भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्य प्रभु और शरीर, कर्म आदि, इसमें राग भी; एकक्षेत्रावगाह, एक क्षेत्र में साथ में दिखते हैं। **दोनों मिले हुए जैसे दिखाई पड़ते हैं...** दूध और पानी की तरह इकट्ठे हों - ऐसे दिखते हैं। आत्मा और शरीर, कर्म तो भिन्न हैं; शरीर जड़ है, कर्म जड़ है और कर्म के लक्ष्य से उत्पन्न हुए पुण्य-पाप के भाव भी वास्तव में तो वे अज्ञान, अचेतन, जड़ हैं, क्योंकि पुण्य-पाप के भाव में ज्ञानभाव का अभाव है। ज्ञान-चैतन्यभाव, चैतन्यभाव, ज्ञायकभाव में अज्ञान ऐसे रागभाव का अभाव है और रागभाव — पुण्य-पाप के भाव में ज्ञानभाव का अभाव है। ऐसा भेदज्ञान इसने कभी सुना नहीं और सुना तो अन्तर में भेदज्ञान करने का प्रयास किया नहीं। वरना सत्य तो वहाँ मिलता है, कहते हैं। एक क्षेत्र में रहने पर भी, पुण्य-पाप, कर्म, शरीर (और) भगवान आत्मा (एक क्षेत्र में रहने पर भी) दोनों भिन्न-भिन्न हैं; दोनों एक हुए नहीं, एक है नहीं। कहो, समझ में आया?

एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध है और दोनों मिले हुए जैसे दिखाई पड़ते हैं... ऐसे दो बातें की। अवगाह है, मिले हुए जैसे दिखते हैं। **तो भी निश्चयनय आत्मद्रव्य को शरीरादि परद्रव्यों से भिन्न ही प्रकाशित करता है।** अन्तर निश्चयदृष्टि, आत्मा को एकसाथ क्षेत्र में दिखने पर भी-मिले हुए जैसे दिखने पर भी, सत्यदृष्टि शरीर, कर्म से आत्मा को भिन्न दिखलाती है। कहो, समझ में आया? प्रथम मूल चीज यह है। यह समझे बिना — सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ दया, दान, व्रतादि के परिणाम करे, उन सबसे मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधता है। उसे मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधता है। आत्मा की शान्ति और आत्मा का धर्म अन्तर ज्ञायकभाव, निश्चयनय कहता है, ऐसा अन्तर में समझे, अनुभव करे तो उसे सम्यक् सत्य का पता लगे और सम्यग्दर्शन हो जाए। समझ में आया?

www.vitragvani.com

कहते हैं, **निश्चयनय आत्मद्रव्य को शरीरादि परद्रव्यों से भिन्न ही प्रकाशित करता है।** शरीरादि शब्द भले ही लिया है। परद्रव्य से भिन्न बताते हैं, ऐसी बात करते हैं। परद्रव्य — शरीर, वाणी, कर्म से भिन्न दिखलाया तो इसका अर्थ यह हुआ कि अन्तर इस चीज से भिन्न है तो परलक्ष्य से भिन्न है; तो लक्ष्य छूटने से अपने आत्मा के ज्ञायकभाव का लक्ष्य हुआ तो राग से भी भिन्न पड़ गया। समझ में आया? इस तत्त्व को लोगों को... यह व्यवहारधर्म और निश्चयधर्म और अमुक धर्म... परन्तु भाई! निश्चय अर्थात् यह। इस निश्चय के भानसहित होने के पश्चात् दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के शुभभाव होते हैं, उन्हें व्यवहारधर्म कहते हैं। जो पुण्यबन्ध का कारण है, उसे व्यवहारधर्म कहा जाता है। परन्तु ऐसी दृष्टि, अनुभव और निश्चय नहीं होवे तो उसे तो व्यवहार ही नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं, **यही भिन्नता मुक्तदशा में प्रकट होती है।** कहते हैं — भिन्नता बतलाते हैं, वह भिन्नता मुक्तदशा में प्रगट दिखती है। अन्दर से पृथक् पड़ा, मैं शरीरादिक से भिन्न हूँ, मेरे द्रव्यस्वभाव से मैं अभिन्न हूँ, मेरे द्रव्य के स्वभाव से अभिन्न हूँ। आत्मा वस्तु है, उसका त्रिकाली ज्ञायक चैतन्यस्वभाव से अभिन्न हूँ और इन परद्रव्यों से भिन्न हूँ — ऐसा होने पर वर्तमान में उसकी दशा में मुक्तपना भासित होता है, और जब सर्वथा मुक्ति होवे, वहाँ सर्वथा छूट जाता है। समझ में आया?

यही भिन्नता मुक्तदशा में प्रकट होती है। अर्थात् दो प्रकार हैं। भिन्नता है — ऐसी अन्तर में दृष्टि करने से, वहाँ प्रगट भिन्न है – ऐसा भासित होता है और फिर सर्वथा भिन्न पड़ जाए, तब तो प्रगट भासित होता ही है कि आत्मा में राग और शरीर थे ही नहीं तो भिन्न पड़ गये। आत्मा में पुण्य-पाप के भाव थे नहीं; शरीर, कर्म थे नहीं; अतः छूट गये। नहीं थे, इसलिए छूट गये; होते तो छूटते नहीं। समझ में आया? आहा! मूल रकम का पता नहीं होता और ऊपर की रकम की सब बातें करे, इसमें कुछ पता नहीं लगता।

इसे अनन्त काल हुआ। चैतन्य महासत्ता प्रभु, एक समय में जिसमें अनन्त सिद्ध परमात्मा अन्दर में भरे हैं। एक आत्मा में अनन्त सिद्ध पड़े हैं। पर्याय है न? सिद्धपर्याय है। ऐसी अनन्त पर्यायें प्रगट होने की शक्ति का मूल सरोवर तो आत्मा है। आत्मा, वह सरोवर, समुद्र, सागर है। उसमें से अनन्त परमात्मा बहते हैं। परमात्मा, हों! एक समय की

www.vitragvani.com

परमात्मदशा, दूसरे समय की, तीसरे समय की..। सादि-अनन्त परमात्मा। सादि-अनन्त एक सिद्ध की परमात्मदशा आत्मा के स्वभाव में पड़ी है। उसमें कोई राग-द्वेष, शरीरादि नहीं; अतः निश्चयदृष्टि करने से वर्तमान में मुक्तपना भासित होता है; पृथक् है तो मुक्तपना भासित होता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और सर्वथा मुक्त होवे वहाँ तो प्रगट व्यवहारनय से भी कहेंगे कि छूटा है, ऐसा यहाँ कहेंगे। समझ में आया? **इसलिए निश्चयनय सत्यार्थ है।** इसलिए सच्ची दृष्टि करना और सच्ची दृष्टि के विषय को दृष्टि में लेना, वह ही सत्य है।

अभूतार्थ नाम असत्यार्थ का है। यहाँ तक तो अपने कल आया था। यहाँ तक कल आया था। अब 'अभूतार्थ' दूसरा शब्द है न? **अभूत अर्थात् जो पदार्थ में न पाया जावे और अर्थ अर्थात् भाव।** जिसमें जो भाव न हो, उसे अभूतार्थ कहते हैं। **उनको जो अनेक प्रकार की कल्पना करके...** देखो! अनेक कल्पना करे कि आत्मा में राग है, शरीर का सम्बन्ध है, कर्म का सम्बन्ध है या नहीं? कर्म का सम्बन्ध है या नहीं? शरीर का सम्बन्ध है या नहीं? राग का सम्बन्ध है या नहीं? संसार है या नहीं? मलिनता है या नहीं? वह अभूतार्थ—पदार्थ में 'नहीं' — ऐसे पदार्थ की कल्पना व्यवहारनय करता है। समझ में आया? **अनेक कल्पना करे उसे अभूतार्थ कहते हैं।**

पदार्थ में न पाया जावे और अर्थ अर्थात् भाव। वास्तव में तो भगवान आत्मा को शरीर का सम्बन्ध भी नहीं है; कर्म का सम्बन्ध भी नहीं, तो भावकर्म का सम्बन्ध भी नहीं। पुण्य-पाप का जो राग है, उसका भी आत्मा में सम्बन्ध नहीं, वह अभूतार्थ है। व्यवहारनय उसे प्रकाशित करता है। है, है, है — ऐसे व्यवहारनय कल्पना करके, आत्मा में विकार है, आत्मा में शरीर है, आत्मा में कर्म है... समझ में आया? आत्मा, कर्म बाँधता है; आत्मा, कर्म छोड़ता है—ऐसे पर के सम्बन्ध की कल्पना करके व्यवहारनय इस प्रकार कहता है। समझ में आया? अभूतार्थ, लो!

जैसे कोई असत्यवादी पुरुष जरा से भी कारण का बहाना-छल पाकर.... छल अर्थात् बहाना। बहाना कहते हैं न? थोड़ा कुछ बहाना देखकर। **असत्यवादी पुरुष जरा से भी कारण का बहाना-छल पाकर अनेक कल्पना करके असदृश को भी**

www.vitragvani.com

सदृश कर दिखाता है। अज्ञानी ता सदृश कर दिखावे, लो! खोटी बात हो, एकदम झूठी हो। यह था, देखो! यह व्यक्ति था, यह था। एक काम नहीं, अनेक काम थे। बहुत पंख दिखे न? बहुत पंख होय तो बहुत कौए होय तो बहुत पंख है नहीं। झूठ बोलनेवाला अनेक कल्पना करके अभूतार्थ का 'है' – ऐसा कहता है। **सदृश कर दिखाता है।** क्या विकार नहीं? विकार का सम्बन्ध नहीं? है; अब सुन न! वह तो अभूतार्थ सम्बन्ध है। समझ में आया? शरीर का सम्बन्ध नहीं? बिल्कुल शरीर का सम्बन्ध ही नहीं? है; तुझे कल्पना करके निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध सिद्ध करना है न? है; परन्तु है, करके वह तो कल्पना दृष्टि से सम्बन्ध है, यथार्थ में सम्बन्ध नहीं है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्यज्योति प्रभु, स्फटिक रत्न, चैतन्य स्फटिक रत्न, उसकी दृष्टि करना, वही सम्यग्दर्शन और निश्चयनय है। व्यवहारनय तो कल्पना करके कहता है। ऐसा है नहीं। विकार न हो तो विकार का अभाव किस प्रकार करेगा? तो विकार है या नहीं? है। कल्पना करके व्यवहारनय अनेक (बातें करे)। अन्दर वास्तव में नहीं है। स्वभाव में विकार नहीं, स्वभाव में कर्म नहीं, स्वभाव को शरीर का सम्बन्ध नहीं। व्यवहारनय उन्हें कहता है कि है। बहाना देखकर, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है न? इतना छल देखकर 'है' कहता है; और एक समय का विकृतभाव भी वस्तुतः स्वभाव में निमित्त सम्बन्ध है, हों! वह भी, हों! व्यवहार है न? व्यवहार, वह असत्य हुआ, पर हुआ। रागादि भाव व्यवहार, इसलिए पुण्य आदि भाव पर हो गये। है या नहीं? परन्तु वह तो कल्पना करके 'है' – ऐसा कहता है। वस्तु में कहाँ है? शान्तिभाई! गजब सूक्ष्म बात, भाई!

भगवान आत्मा, जिसे यहाँ निश्चय कहते हैं, वह तो जो भाव उसमें है, उसे बताने को वह निश्चय का विषय है। उसमें नहीं, तथापि 'है' — ऐसी कल्पना सम्बन्ध से, एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध से अथवा एक समय की विकृत पर्याय का अंश; पूरा समुदाय त्रिकाल आनन्दकन्द में एक कृत्रिम अंश देखकर, छल देखकर, आत्मा में है — ऐसी कल्पना व्यवहारनय करता है। समझ में आया? आहाहा..!

जैसे यद्यपि जीव और पुद्गल की सत्ता भिन्न है,... यद्यपि भगवान आत्मा

www.vitragvani.com

और पुद्गल का अस्तित्व, सत्व-होनापना भिन्न है। दो अंगुलियों में एक अंगुली का सत्व दूसरी अंगुली के सत्व से भिन्न है। सत्व अर्थात् सत्ता, होनापना। इस अंगुली में दूसरी अंगुली के अस्तित्व का अभाव है। इसी तरह आत्मा में शरीर के अस्तित्व का अभाव है। आत्मा में पुद्गल के अस्तित्व का अभाव है। ऐसे आत्मा में वास्तव में तो विकार के अस्तित्व का अभाव है। समझ में आया? ये सब पुद्गल ही हैं। एक ओर ज्ञानभाव, एक ओर अज्ञानभाव। ज्ञानभाव जो सर्वज्ञपद, वह आत्मा और अज्ञानभाव। जो पुण्य-पाप, शरीर, कर्म, वह अज्ञानभाव। दोनों भिन्न-भिन्न हैं, दोनों का सत्व भिन्न है, दोनों की सामर्थ्य भिन्न है, दोनों का लक्ष्य भिन्न है, दोनों का फल भिन्न है। समझ में आया?

पुद्गल की सत्ता भिन्न है, स्वभाव भिन्न है,... लो! भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभाव है, रागादि का विकारस्वभाव है, शरीरादि का भी अचेतनस्वभाव है। सत्व भिन्न, **स्वभाव भिन्न है, प्रदेश भिन्न है,...** भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी शुद्धस्वभाव का पिण्ड है, वे प्रदेश भिन्न हैं और पुण्य-पाप की कल्पना, शरीर, वाणी, कर्म के प्रदेश भी वास्तव में तो भिन्न हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप, रत्न, चैतन्य रत्नाकर के क्षेत्र का अंश-भेद भिन्न है और राग-द्वेष, पुण्य-पाप, शरीर, कर्म के प्रदेशभेद, क्षेत्रभेद, अंशभेद; इस स्वभाव से अत्यन्त भिन्न है, दोनों का एक क्षेत्र नहीं है। अरे... अरे! नवरंगभाई! राग का क्षेत्र भिन्न! यह तो संवर (अधिकार में) अपने आ गया। संवर में आ गया। उस अधिकार का विस्तार अभी अहमदाबाद में बहुत पढ़ा। पीछे से लिया था, अन्तिम से, तीसरे दिन। जो कहा, वह बात सूक्ष्म पड़े, इसलिए दो दिन नहीं ली, फिर तीसरे दिन से ली थी।

आत्मा का स्वभाव और विकार, दो के बीच आधार-आधेय सम्बन्ध नहीं। स्वभाव आधार और विकार के आधार से आधेय रहे - ऐसा नहीं तथा विकार आधेय और आत्मा आधार; आत्मा के आधार में विकार रहता है - ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म वस्तु है। इसे मनुष्यपना अनन्त बार मिला, त्यागी भी अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आत्मज्ञान के बिना यह द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि चार गतियों में भटकेगा। समझ में आया?

www.vitragvani.com

कहते हैं, भगवान आत्मा तो चैतन्यस्वभाव है और पुण्य-पाप का राग, वह तो विकार स्वभाव है। शरीर, कर्म का अचेत स्वभाव है और भगवान आत्मा का ज्ञायकभाव है। दोनों के भाव ही भिन्न हैं। स्वभाव कहो या भाव कहो। पहले सत्त्व कहा, अस्ति, मौजूदगी भिन्न है; फिर दोनों के स्वभाव भिन्न है — (ऐसा कहा।) आहाहा! समझ में आया? धनजीभाई! गजब बात, भाई! ऐसी बातें! बापू! परन्तु यह तो तेरे मूल घर की बात है। तेरा सत्त्व तो ज्ञायकभाव का है और रागादि का सत्त्व तो विकारी है। शरीर, कर्म का अचेतन सत्त्व है। दोनों के स्वभाव भिन्न हैं। सत्त्व भिन्न, स्वभाव भिन्न, प्रदेश भिन्न — तीन ले लिये। आहाहा! समझ में आया? संवर में तो चार बोल लिये थे न? कहे थे न उस दिन? संवर (अधिकार, समयसार)।

भगवान आत्मा स्वभाव, चैतन्यस्वभाव, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म... समझ में आया? श्रीफल का दृष्टान्त दिया था। श्रीफल होता है न? श्रीफल, नारियल। नारियल कहते हैं न? नारियल में जो बाहर जो बाहर की छाल है, ऊपर छाल होती है न? और काँचली है और काँचली की ओर की लालिमा है। काँचली की ओर की लालिमा। तीन बोल है न? संवर अधिकार में तीन बोल है; इसलिए यह दृष्टान्त वहाँ लिया था। श्रीफल-नारियल है, उसमें एक ओर छाल है, छाल; फिर काँचली और काँचली की ओर की लालिमा है। लालिमा होती है न? खोपरापाक करते हैं न? तो छिलने में लाल-लाल रंग की लालिमा है, वह निकाल देते हैं न? लाल रंग की बारीक पतली छाल वह सब काँचली की ओर की चीज है। शोभालालभाई! वह सफेद मीठे गोले की वस्तु नहीं है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञायक मीठा आनन्द गोला है। सफेद का अर्थ शुद्ध और मीठास का अर्थ आनन्द। आत्मा तो शुद्ध आनन्दकन्द का गोला है, वह आत्मा है और पुण्य-पाप के भाव, वे छाल हैं। (श्रीफल की) लाल छाल है (ऐसे)। समझ में आया? और काँचली है, वह आठ कर्म हैं तथा यह शरीर है, वह छाल (जटा) है। समझ में आया? ये तीन कहकर, भावकर्म — पुण्य-पाप के भाव; जड़कर्म-काँचली, और जटा-नोकर्म, इनमें आत्मा नहीं और आत्मा में ये नहीं, क्योंकि दोनों का सत्त्व भिन्न है, दोनों के स्वभाव भिन्न हैं। समझ में आया? और दोनों के प्रदेश भिन्न हैं। आहाहा! स्वभाव भिन्न कहा; सत्त्व

www.vitragvani.com

भिन्न, स्वभाव भिन्न और प्रदेश भिन्न (कहा)। क्षेत्र भी अलग डाला है। जिस अंश में उत्पन्न होते हैं, मलिन क्षेत्र के अंश में (उत्पन्न होते हैं), वह क्षेत्र स्वभाव का क्षेत्र है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

दोनों के बीच अत्यन्त स्वरूप विपरीतता है। पुण्य-पाप के भाव में आत्मा नहीं है, आत्मा में पुण्य-पाप के भाव नहीं हैं। कर्म, आत्मा में नहीं और कर्म में आत्मा नहीं। शरीर में आत्मा नहीं, आत्मा में शरीर नहीं। अब दोनों के बीच अत्यन्त स्वरूप विपरीतता, भेद है। स्वभावदृष्टि से। समझ में आया? पुण्य-पाप के भाव का स्वरूप, चैतन्यस्वरूप जो ज्ञायकभाव निश्चयस्वरूप है, उससे अत्यन्त विपरीत है। कर्म और शरीर का स्वरूप तो विपरीत है ही। तीनों को अत्यन्त स्वरूप विपरीतता है। ज्ञायकभाव जो निश्चय है, उससे अभूतार्थ भाव जो व्यवहार है, दोनों का स्वरूप अत्यन्त विपरीत है और दोनों में आधार-आधेय नहीं।

जैसे वह सफेद-छोला, मीठा खोपरा है, वह लाल के आधार से रहा नहीं। लालिमा है न? उसे निकाल देते हैं, तो भी खोपरा रहता हे, उसे निकाल डालने पर भी रहता है। यदि लालिमा के आधार से हो तो लाल निकलने पर साथ ही नारियल का भी नाश हो जाए। समझ में आया? भगवान आत्मा... जैसे वह सफेद गोला लालिमा के आधार से नहीं, काँचली के आधार से नहीं, शरीर (जटा) के आधार से नहीं; इसी तरह लालिमा-कर्म और शरीर, आत्मा के आधार से नहीं। आत्मा के आधार से होवे तो पृथक् नहीं पड़ जाए। पृथक् पड़ जाता है; आत्मा रह जाता है और वह उसके कारण उसके आधार से निकल गया। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य गोला भिन्न निश्चयस्वरूप भूतार्थ है। उसे पुण्य-पाप का आधार नहीं है। पुण्य-पाप को आत्मा का आधार नहीं है और आत्मा को उनका आधार नहीं है और उन पुण्य-पाप को आत्मा का आधार नहीं है। आत्मा है तो पुण्य-पाप होते हैं — ऐसा नहीं और पुण्य-पाप है तो आत्मा टिकता है - ऐसा नहीं। समझ में आया?

भेदज्ञान सूक्ष्म बात है। 'भेदज्ञान ही ज्ञान है, बाकी बूरो अज्ञान।' बाकी सब अज्ञान है। अनन्त काल में इसने कभी भेदज्ञान नहीं किया। 'भेदज्ञान साबु भयो, समरस निर्मल

www.vitragvani.com

नीर, धोबी अन्तर आतमा, धोवे निजगुण चीर।' बनारसीदास हुए हैं, उन्होंने भेदज्ञान का दृष्टान्त दिया है। 'भेदज्ञान साबु भयो, समरस निर्मल नीर।' साबुन लेकर पानी में धोते हैं न? क्या कहलाता है अपने? तारवे। दूसरी कुछ भाषा है। स्त्रियों की खास भाषा है। यह कुछ कहते हैं। छोटी उम्र में सुनी हुई बात ऐसी की ऐसी रह गयी है। नदी में पानी बहुत आवे न? लकड़ी का लेकर जाए। खडका! लकड़ी का खड़का लेकर जाए। वहाँ रेत में कहाँ मारे? लकड़ी का खड़का और .....खुल्ले पानी में.. निचोड़े। समझ में आया? ये ऐसा करे, इसलिए वह मैल जो हो, वह पृथक् पड़ जाए।

ऐसे 'समरस निर्मल नीर' — भगवान आत्मा, राग-द्वेष से भिन्न। 'भेदज्ञान साबु भयो, समरस निर्मल नीर' — स्वाभावसन्मुख हुआ और जो शान्ति का अंश आया, उसमें राग के मैल का नाश हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : समरस अर्थात्?

उत्तर : समरस अर्थात् समता। राग से भिन्न पड़ा न? राग से भिन्न पड़ा, उतना अरागभाव हुआ, वह समरस हुआ। उसमें मैल निकल गया। 'धोबी अन्तर-आतमा' — वह अन्तरात्मा धोबी है। 'धोबे निज गुण चीर' — अपने गुण की दशा में विकार है, उसे स्वभाव-सन्मुख होकर धोता है। समझ में आया? कहाँ दरकार है? अभी खाना, पीना, मौज (करना है)। धर्म के बहाने बाहर की क्रिया करते हैं तो हो गया धर्म, जाओ! समझे? धर्म, वह कहाँ होगा? एक सैकेण्ड का धर्म जिसे जन्म-मरण के अन्त की भनकार बुलावे। एक सैकेण्ड का धर्म जिसे मुक्ति का प्रयाण बतावे। नाश-व्यय, उत्पाद। समझ में आया? आहाहा!

चैतन्यपिण्ड ज्ञायकभाव, जो भूतार्थ-निश्चय है, उसमें यह व्यवहार नहीं, क्योंकि दोनों के प्रदेश भिन्न हैं, क्षेत्र भिन्न है, आधार भिन्न (है)। भगवान आत्मा ज्ञायकभाव है तो पुण्य-पाप, शरीर, कर्म — वह अज्ञानभाव है। इसमें भी विवाद करते हैं —अज्ञान कैसे कहते हो? वह सब अज्ञान ही है; सुन न! भाई! तुझे पता नहीं। ये सब रजकण अन्धे हैं, कर्म अन्धे हैं और पुण्य-पाप के भाव भी अन्धे हैं। पुण्य-पाप, शुभराग अन्धा है। आहाहा! यह शुभराग-दया, दान, व्रत का भाव—राग अन्धा है, राग है। वह देखता नहीं, देखता

www.vitragvani.com

(सूझता) तो भगवान आत्मा है। आहाहा! अन्धे और सूझते का स्वभाव भिन्न है। ऐसे अन्तर में दृष्टि करने (को) यह बात गाथा में करते हैं। पुरुषार्थसिद्धि-उपाय। पुरुष अर्थात् चैतन्य की प्राप्ति का उपाय। यह उपाय है। समझ में आया? अभी नौ गाथा तक तो उपोद्घात करेंगे। दसवीं गाथा से पुरुषार्थसिद्धि-उपाय शुरु करेंगे। यहाँ तो अभी नौवीं गाथा तक उपोद्घात है - भूमिका बाँधते हैं। ये अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त वनवासी नौ सौ वर्ष पहले दिगम्बर सन्त थे। वे पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में पाँचवीं गाथा में कहते हैं कि भाई! तेरे स्वभाव का सत्त्व और राग — पुण्य-पाप का सत्त्व भिन्न है; तेरे स्वभाव का भाव और विकार का भाव भिन्न है। तेरे स्वभाव के अंशरूप प्रदेश और विकार के प्रदेश-अंश भिन्न हैं। किसी का किसी के साथ सम्बन्ध नहीं है। व्यवहारनय, सम्बन्ध है — ऐसी कल्पना करता है। निश्चय में नहीं है।

तथापि एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध का छल (बहाना) पाकर... छल प्राप्त करके। इतना जरा क्षेत्र का सम्बन्ध देखकर व्यवहारनय **'आत्मद्रव्य को शरीरादिक परद्रव्य से एकत्वरूप कहता है।'** एक है, एक है, एक है (- ऐसा कहता है।) कौन कहता है? अभूतार्थ व्यवहारनय। **मुक्तदशा में प्रकट भिन्नता होती है। तब व्यवहारनय स्वयं ही भिन्न-भिन्न...** यहाँ अब सिद्ध करते हैं। पूर्णदशा प्रगट हुई, वहाँ साथ में रहे नहीं। रागादि रहे नहीं तो व्यवहारनय कहता है कि दो भिन्न है। संसार और मोक्ष दोनों पर्यायें भिन्न हैं, द्रव्य त्रिकाल भिन्न है। समझ में आया? आहाहा!

भिन्न-भिन्न प्रकाशित करने को तैयार होता है। अतः व्यवहारनय असत्यार्थ है। पृथक्-भिन्न पड़े, तब व्यवहारनय कहता है कि ठीक है। पहले भिन्न है — ऐसा नहीं मानता, इसलिए (व्यवहारनय) खोटा है — ऐसा कहते हैं। झूठे का न्याय दिया है। भिन्न पड़े, तब कहता है कि दोनों भिन्न हैं, परन्तु वर्तमान भिन्न है - ऐसा नहीं कहा; इसलिए वह नय झूठा है। समझ में आया? सम्यक्दृष्टि क्या है और सम्यग्दर्शन का विषय क्या है — यह ही इसने अनन्त काल में लक्ष्य में ही लिया नहीं, बाकी सब किया। करो, यह करो, पुण्य करो, भक्ति करो, पूजा करो, दान करो... सब शुभराग है। शुभराग करने से बन्ध है; क्रिया से नहीं, बहुत तो पुण्य है, शुभभाव है। मनुष्यदेह में वेष बदल जाएगा तो कदाचित्

www.vitragvani.com

स्वर्ग का देव (होगा)। आत्मा बदलेगा नहीं। आत्मा बदले बिना इसे कुछ सुधार होगा — ऐसा कभी होता नहीं। शरीर बदलने से आत्मा में क्या सुधार हुआ? समझ में आया?

कहते हैं, **अतः व्यवहारनय असत्यार्थ है। 'प्रायः भूतार्थ बोध विमुखः सर्वोऽपि संसारः'** अब कहते हैं। प्रायः अर्थात् विशेषरूप से–खास करके। भूतार्थ बोध विमुख। सच्चे तत्त्व का आत्मबोध, ज्ञायकभाव — वह आत्मा, ऐसा बोध, उससे **'सर्वोऽपि संसारः' अतिशयपने सत्यार्थ जो निश्चयनय है, उसके परिज्ञान से विपरीत...** है। क्या कहते हैं? **'भूतार्थ बोध विमुखः सर्वोऽपि संसारः'** अब इसकी व्याख्या–प्रायः की व्याख्या। प्रायः अर्थात् **अतिशयपने सत्यार्थ जो निश्चयनय...** भगवान आत्मा पूर्ण शुद्धभाव, वही सत्य है, ऐसा जो निश्चयनय **उसके परिज्ञान से...** उसका जानपना। स्व सत्त्व स्वभाव और अपने प्रदेश पर से भिन्न है–ऐसा जानपना; उससे उल्टा–उसके उल्टा जानपना। **जो परिणाम (अभिप्राय)...** मैं रागवाला हूँ, मैं पुण्यवाला हूँ, मैं कर्मवाला हूँ, मैं शरीरवाला हूँ — ऐसा निश्चयनय के अभिप्राय से उल्टा अभिप्राय, **वह समस्त संसारस्वरूप ही है।** वह अभिप्राय संसारस्वरूप है। समझ में आया? स्त्री–पुत्र, संसार नहीं है — ऐसा कहते हैं। बीड़ी, संसार नहीं है, इसलिए कुछ रख सकते हैं?

मुमुक्षु : अभिप्राय, संसार है।

उत्तर : अभिप्राय, संसार है। मकान, बीड़ी, करोड़ों रुपये, वह संसार नहीं है; ऐसे भगवान इनकार करते हैं। संसार किसे कहते हैं? सुनो! इसके सामने मोक्ष आयेगा, हों! भगवान आत्मा ज्ञायकभाव, शुद्धभाव, ध्रुवभाव, अभेदभाव, आनन्दभाव, वह निश्चय; उसका ज्ञान करना, वह सच्चा ज्ञान है। उस ज्ञान से विपरीत बोध (अर्थात्) मैं रागवाला, मैं पुण्यवाला, मैं शरीरवाला, मैं विकार हूँ — ऐसा अज्ञान, व्यवहार का बोध, वह प्रायः संसार है। प्रायः अर्थात् अतिशयरूप वह संसार है। सब संसारी जीव है, ऐसा यहाँ नहीं। वही संसार है। आत्मा के सम्यक् निश्चयबोध से उल्टा बोध, विपरीत बोध, वही संसार है। बोध की व्याख्या ऐसे की। फिर अभिप्राय लिया। समझ में आया?

आत्मा, पर का कर सकता है, राग का कार्य मेरा है अथवा राग मुझमें है, पुण्य मुझमें है, शरीर मुझमें है, कर्म मुझमें है... जो नहीं — ऐसे बोध से उल्टा। आत्मा में विकार, कर्म,

www.vitragvani.com

शरीर एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध होने पर भी, अन्दर में नहीं है। ऐसा बोध जो नहीं करता, वह बोध से विमुख है। तो उसे व्यवहार का ज्ञान है। मैं ऐसा हूँ, मैं रागवाला हूँ, मैं शरीरवाला हूँ — यह बोध, विपरीत-मिथ्यात्वभाव का बोध है और विपरीत मान्यता को अथवा विपरीत बोध को... बोध शब्द पड़ा है, इसका अर्थ अभिप्राय लिया है। उसे भगवान अमृतचन्द्राचार्यदेव दिगम्बर सन्त, दिगम्बर मुनि, जंगल में बसनेवाले मुनि कहते हैं (कि) जिसे निश्चय का बोध नहीं और निश्चय से विरुद्ध अकेले रागादि का सम्बन्ध है, मेरे हैं — ऐसा बोध है, वही मिथ्या अभिप्राय, संसार है। वह संसार है। आहाहा! समझ में आया?

'संसरण इति संसार' — स्वभाव से खिसककर-हटकर, विकार, शरीर, कर्म मेरे हैं और उनमें मैं हूँ; वे मुझमें हैं, मैं उनमें हूँ; पूरा ज्ञायकभाव उनमें है और वे मेरे हैं — ऐसा अभिप्राय पूरे निश्चयनय के बोध से विपरीत-उल्टा अभिप्राय, उल्टा ज्ञान, उल्टा बोध; यह बोध ही संसार है। देखो! भाषा। लो! यह तो संसार उल्टे बोध में ला दिया — ऐसी कोई टीका (आलोचना) करते हैं। समझ में आया? और मोक्ष कहा सुलटे बोध में, इसमें वास्तव में तो ऐसा है। क्या कहते हैं, समझ में आया? यह तो अभी पहले संसार साबित करते हैं। यहाँ तो तुमने लाकर कहाँ रखा? परन्तु ये दिगम्बर आचार्य-मुनि हैं, वे कहते हैं। पाँचवीं गाथा देखो! है? **'प्रायः भूतार्थ बोध विमुखः सर्वोऽपि संसारः'** भगवान आत्मा स्वभाव के पूर्ण शुद्धभाव का भण्डार भावस्वरूप, उसका बोध नहीं करके, उसकी सन्मुखता का ज्ञान नहीं करके, सन्मुखता की प्रतीति नहीं करके, सन्मुखता का सत्कार, स्वभावसन्मुख नहीं होकर; जितना राग का ज्ञान, राग का सत्कार, पुण्य का भाव, पुण्यभाव का सत्कार वह सब ज्ञान, निश्चयनय से विपरीत बोध है। वह बोध, संसार है। वह उल्टा बोध, संसार है (-ऐसा कहा)। यहाँ तो ऐसा कहें, स्त्री-पुत्र संसार, कर्म संसार। नहीं, कर्म भी संसार नहीं। कर्म भी नहीं। कर्म, संसार नहीं; कर्म तो जड़ है। जड़ में कहीं आत्मा के दोष का संसार होगा? संसार तो दोष है, संसार तो दोष है। वह दोष स्वभाव में स्वभाव से उल्टे में दोष होय। वहाँ कहाँ संसार पड़ा है, वह वह संसार होय। समझ में आया? आहाहा! कहो, प्रवीणभाई! लो, यह संसार! अरे... अरे...! ऐसा संसार? तुमने तो अकेली निश्चय की बात की - ऐसा कहते हैं, लो! परन्तु कहते हैं क्या? सुन न!

www.vitragvani.com

इस निश्चय के — तत्त्व के स्वभाव के भान बिना के जितने बोध और श्रद्धा है — व्यवहार की श्रद्धा, व्यवहार का ज्ञान, व्यवहार के पहलू, कर्म की प्रकृति के और उसके तथा नौ पूर्व का ज्ञान और ग्यारह अंग का ज्ञान — यह सब आत्मा के निश्चय बोध रहित यह बोध है, यह सब मिथ्या अभिप्राय है — ऐसा कहते हैं। लो! आहाहा! और मिथ्या बोध तथा मिथ्या अभिप्राय, वही जीव की पर्याय का संसार है। पर्याय में संसार है न? संसार बाहर रहता होगा? दोष, वह गुण की विपरीत दशा में रहे या दोष बाहर रहता होगा? समझ में आया? गजब बात, भाई! अब यह तो निश्चय कहा; परन्तु यह स्त्री-पुत्र संसार को पहले छोड़े तो यह हों - ऐसा आता है न? देखो! निमित्त का छोड़े, तब नैमित्तिक छूटे, आता है या नहीं? अरे..! सुन! यह तो अध्यवसाय छुड़ाने के लिये निमित्त को छोड़ा - ऐसा कहते हैं। वहाँ... नहीं? अध्यवसाय छुड़ाते हैं। ये रागादि मेरे, पर आदि मेरे — ऐसा अध्यवसाय छोड़ने पर परचीज का लक्ष्य छूट गया, उसे 'पर छोड़ा' - ऐसा कहा जाता है। क्या हो?

स्त्री, पुत्र पैसा, शरीर तो संसार नहीं, परन्तु आठ कर्म तो संसार है या नहीं? संसार का मूल कारण तो कर्म है, तो वह संसार है या नहीं? नहीं; स्त्री-पुत्र-शरीर, संसार नहीं, कर्म संसार नहीं। संसार की बड़ी खान मिथ्या अभिप्राय अर्थात् निश्चय के बोध से जितना विपरीत बोध है, उस बोध को यहाँ संसार कहते हैं। छोटाभाई! यह तो निश्चय आया। पहले व्यवहार-स्त्री-पुत्र, संसार है — ऐसा तो तुम कहते नहीं। संसार — द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव — ऐसे पाँच बोल आते हैं, लो! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव। यहाँ तो वास्तव में अशुद्ध निश्चय का भाव कहो या व्यवहार का भाव कहो, वह संसार है - ऐसा कहते हैं; बाकी बाहर का तो निमित्त हो गया। द्रव्य, क्षेत्र, काल, (भाव) और भव। पाँच में से भाव लिया। पाँच प्रकार के परिवर्तन हैं न? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव में अनादि काल से परिवर्तन करता है न? वह एक भाव ही संसार है, अन्य तो निमित्त हैं। समझ में आया? द्रव्य, क्षेत्र, काल और भव, ये चार तो निमित्त हैं। वह भाव उपादान मूल संसार है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा, पूर्ण चैतन्यप्रभु का बोध नहीं करके, निश्चय का बोध नहीं करके

www.vitragvani.com

अकेला व्यवहार, राग, पुण्य, शरीर, कर्म ही अपनेरूप स्वीकार करके, उसका जो विपरीत बोध है, सम्यक् से — निश्चय से (विपरीत बोध है), वह अभिप्राय ही संसार है। पलटाकर बात करें तो मिथ्यात्व जाने पर स्वभावसन्मुख जो भाव हुआ, वह ही मोक्ष है, क्योंकि स्वभाव मुक्तस्वरूप है। स्वभाव — चैतन्यस्वभाव, ज्ञायकभाव, मुक्तस्वरूप है। मुक्तस्वरूप सन्मुख बुद्धि, दृष्टि हुई, भाव हुआ, ज्ञान हुआ तो मुक्तस्वभाव का ज्ञान, वह ज्ञान ही मुक्तस्वरूप है। समझ में आया? आहाहा! 'मुक्त एव' नहीं आता? कलश में आता है। आता है, बहुत सब बातें आ गयी हैं।

यह तो एक अलग प्रकार से स्वाध्याय करने के लिये यह उठाया। कभी व्याख्यान में इसकी स्वाध्याय नहीं की। पहला-पहला है। गुजराती हुआ और लोगों के हाथ में रहे और श्रावकाचार किसे कहते हैं? — इसका (पता पड़े)। लोगों को ऐसा लगता है कि ठीक! यह पढ़ते हैं। श्रावकाचार में पहले तो यहाँ दर्शन की शुरु की है। यह तो अभी उपोद्घात करते हैं, फिर दर्शन की बात लेंगे। श्रावक होने से पहले इसे अखिल प्रयत्न द्वारा सम्यग्दर्शन को प्रगट करना चाहिए। पहली गाथा ली है। समझ में आया? है न? कितनी वीं गाथा कही? २१? गुजराती में ख्याल आ जाता है, अभी तो गुजराती पढ़ा है न? देखो! २१ गाथा

तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन।
तस्मिन् सत्येव यतो भवति ज्ञानं चरित्रं च।।२१।।

क्या कहते हैं? देखो! **'तत्रादौ सम्यक्त्वं'** प्रथम में प्रथम सम्यग्दृष्टि से सम्यग्दर्शन प्रगट करना अथवा श्रावक हुए पहले भी सम्यग्दर्शन प्रगट करना। इससे पहले श्रावक हो सकता नहीं। २१ गाथा है। **'तत्रादौ'** है न? **'तत्रादौ'** इसे **प्रथम समस्त प्रकार सावधानतापूर्वक यत्न से...** देखो! प्रथम समस्त प्रकार से जो बने तो **सम्यग्दर्शन को भले प्रकार अंगीकार करना चाहिये...** जो बने अर्थात् जिस प्रकार अन्दर हो, उस प्रकार से सम्यग्दर्शन प्रगट करना। बने तो — ऐसा नहीं; यदि बने, होवे तो करना अर्थात् यह होता है - ऐसा कहते हैं। **इसके प्राप्त होने पर अवश्य ही मोक्षपद प्राप्त होता है।** सम्यग्दर्शन होने पर, आत्मा के शुद्धस्वभाव का अनुभव होने पर अवश्य मोक्ष पायेगा।

www.vitragvani.com

इसके बिना सर्वथा मोक्ष नहीं होता। यह स्वरूप की प्राप्ति का अद्वितीय कारण है। अतः इसके अंगीकार करने में किंचित्मात्र भी प्रमाद नहीं करना। मृत्यु का वरण करके भी इसे प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य करना। देखो! **बहुत कहाँ तक कहें? इस जीव के भला होने का उपाय सम्यग्दर्शन समान अन्य कोई नहीं।** समझ में आया? इस उपाय का पता नहीं होता, सम्यग्दर्शन क्या है, इसका पता नहीं होता और चलो, करो पुरुषार्थ। परन्तु क्या करे? आहाहा! फिर कहते हैं, हों! **इसे ही प्रथम अंगीकार करने का क्या कारण है, वह कहते हैं। 'यतः तस्मिन् सति एव ज्ञानं च चरित्रं च भवति।' उस सम्यग्दर्शन के होने पर ही सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र होता है।** सम्यग्दर्शन होवे तो सम्यग्ज्ञान होवे, तो सम्यक्चारित्र होता है। सम्यग्दर्शन के बिना चाहे ग्यारह अंग पढ़ जाए, नौ पूर्व पढ़ जाए तो भी वह अज्ञानी है। सम्यग्दर्शन के बिना पंच महाव्रत आदि क्रिया करे तो भी अज्ञानी है। समझ में आया? आहाहा! मूल बात पड़ी रही।

यहाँ तो '**आदौ**' शब्द लिया है। पहले में पहला धर्म करनेवाले जिज्ञासु को सम्यग्दर्शन प्रगट करना। यह सम्यग्दर्शन, भूतार्थ पदार्थ के आश्रय से प्रगट होता है। भूतार्थ – त्रिकाल क्या है?—यह पहले समझना चाहिए, ज्ञान में लेना चाहिए कि यह त्रिकाल क्या है? यह चीज क्या कहते हैं? पूरा तत्त्व, क्षणिक और राग और यह क्या है? ऐसा इसके ज्ञान में भाव का बोध जैसी सामने चीज है, वैसी ज्ञान में भासे — ऐसा अन्दर में प्रथम ज्ञान करना। यह द्रव्य कहते हैं, भाव कहते हैं, त्रिकाल कहते हैं – यह क्या? और यह क्षणिक राग कहते हैं – यह क्या? ऐसा भलीभाँति ख्याल करके स्वभाव-सन्मुख होना। यह प्रयत्न करना ही धर्मी जीव का प्रथम कर्तव्य है। समझ में आया? कहो, नवरंगभाई! ऐसा ही है? यह सब कहाँ गया? वह छानकर पी गया। पानी छानकर (पीना)। आत्मा का बल राग को छानकर पीना, राग से भिन्न है – ऐसा पीना। फिर होता है, शुभभाव होता है। उसकी क्रिया उसके साथ उसके कारण होती है, हों! वह कहीं आत्मा नहीं करता, परन्तु इस आत्मा के मूल दर्शन बिना और मूल ज्ञान बिना के बोध को और सबको आत्मा का ज्ञान नहीं कहते, उसे व्रत भी नहीं कहते।

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन अर्थात् त्रिकाल आत्मा के अन्तर बोध और अनुभव बिना यह व्रत और व्रतधारी नहीं कहते। वह कुलिंगधारी है। वह आत्मा के व्रत का धरनेवाला नहीं है, क्योंकि **'तस्मिन् सत्येव'** सम्यग्दर्शन होने पर भी, **'यतो'** इस कारण **'भवति ज्ञानं चरित्रं च'।** तो उसे सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता है। इस सम्यग्दर्शन बिना एक रहित शून्य है, एक (अंक) रहित शून्य है। ऐसे सम्यक्त्व और अन्तरदृष्टि तथा अनुभव बिना इसके तप, त्याग और व्रत सब रण में शोर मचाने जैसा है। यह एक बिना की शून्य है। पुण्य बाँधे तो वह तो अनादि से है, वह बँधता है, उसमें नयी वस्तु कहाँ आयी? समझ में आया? स्वर्ग आदि मिल जाए तो यह अनन्त बार मिला है। उसमें क्या मिला? इसे उसमें क्या मिला? मिलते समय तो वहाँ की आकुलता है। पुण्य सामग्री के भोग भोगना, वह तो आकुलता है, अंगारों में सिकेगा। कषायरूपी अंगारों से सिकता है। समझ में आया?

अतिशयपने सत्यार्थ जो निश्चयनय है, उसके परिज्ञान से विपरीत जो परिणाम (अभिप्राय) है, वह समस्त संसारस्वरूप ही है।

भावार्थ : संसार कोई जुदा पदार्थ नहीं है। है? आहाहा! आस्रव और बन्धभाव, वह संसार है। भाव आस्रव और भाव बन्ध, वह संसार है। भावार्थ में है न? **संसार कोई जुदा पदार्थ नहीं है। इस आत्मा का परिणाम...** देखो! यह आत्मा के परिणाम; परिणाम अर्थात् पर्याय; पर्याय अर्थात् भाव। **निश्चयनय के श्रद्धान से विमुख होकर,...** देखो! यह परिणाम की व्याख्या करते हैं। **निश्चयनय के श्रद्धान से विमुख होकर,...** भगवान आत्मा अभेदस्वरूप चैतन्य परिपूर्ण परमात्मा है — ऐसे बोध से विमुख होकर **शरीरादिक परद्रव्यों के साथ एकत्व श्रद्धानरूप होकर प्रवर्तन करे...** शरीर, कर्म, राग, द्वेष, पुण्य, भावकर्म और नोकर्म के साथ एकत्व श्रद्धानरूप प्रवर्ते - ये मेरे हैं, एक हैं - ऐसा माने।

उसी का नाम संसार है। उसका ही नाम संसार। स्पष्टीकरण बहुत अच्छा किया है। समझ में आया? जयन्तिभाई! यह संसार। धन्धा-पानी करे, वह संसार? नहीं। तेरा संसार तुझसे भिन्न रहे? तेरी शरीर, राग-द्वेष की एकताबुद्धि — अभिप्राय है, वही तेरा संसार है। समझ में आया? **इसलिए जो जीव संसार से मुक्त होने के इच्छुक हैं...**

www.vitragvani.com

इसलिए ऐसे परिणाम से मुक्त होना चाहता है, **उन्हें शुद्धनय के सन्मुख रहना योग्य है।** उसे तो भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, उसके सन्मुख रहना योग्य है। उसकी विमुखता से हट जाना, सन्मुख रहना, परिपूर्ण स्वभावसन्मुख रहना। भले फिर शुभभाव आदि हो, परन्तु स्वभावसन्मुख रहना, इसका नाम संसार के अभाव करने का उपाय कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)